नेपालः राजनैतिक सुधार के लिए घोषणा पत्र
Nepal: A Manifesto for Political Reform

प्रशांत झा
Prashant Jha
May 18, 2015

25 अप्रैल को नेपाल विनाशकारी भूकंप से दहल उठा और उसके बाद भी भूकंप के झटके आते रहे और 12 मई को एक बार फिर से एक शक्तिशाली भूकंप ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया. आठ हज़ार से अधिक लोग अपनी जान गँवा बैठे. लगभग 600,000 से अधिक मकान पूरी तरह से ध्वस्त हो गए या आंशिक रूप में क्षतिग्रस्त हो गये. आठ मिलियन लोग किसी न किसी रूप में इस विनाशकारी भूकंप से प्रभावित हुए हैं. हज़ारों स्कूलों की इमारतें खंडहरों में बदल गई हैं. काठमांडु की सांस्कृतिक विरासत को गहरा आघात लगा है. अभी भी यह त्रासदी ज़ारी है, क्योंकि लाखों लोग बेघर हो गए हैं और चार सप्ताह में बारिश का मौसम भी आने वाला है. संसाधनों की बेहद कमी है और आवश्यक वस्तुओं का पर्याप्त भंडार मौजूद नहीं है. सरकारी अनुमान के अनुसार पुनर्निर्माण के लिए दस बिलियन डॉलर की आवश्यकता है और यह कार्य अभी व्यवस्थित रूप में शुरू भी नहीं हुआ है.

यह जानते हुए भी कि भूकंप की दृष्टि से यह क्षेत्र संवेदनशील है और विशेषज्ञों द्वारा और भी बड़े भूकंप के आने की भविष्यवाणी के बावजूद इस त्रासदी पर कोई अच्छी रिपोर्ट तैयार नहीं की गई है. आखिर क्या कारण है कि नेपाल सरकार और वहाँ के समाज ने इस त्रासदी से निपटने के लिए कोई खास तैयारी नहीं की. आवश्यकता इस बात की है कि भूकंप की इस विनाशकारी घटना की राजनैतिक पृष्ठभूमि पर एक रिपोर्ट तैयार की जाए जिसमें इस बात का ब्यौरेवार वर्णन हो कि नेपाल राज्य कैसे बना, कैसे इसका फैलाव हुआ और कैसे पिछले पच्चीस साल में दीमक की तरह यह खोखला होता चला गया. और इस रिपोर्ट में इस महत्वपूर्ण पक्ष पर भी प्रकाश डाला जाए कि अगले कुछ सप्ताहों, महीनों और वर्षों में यह कैसे इस संकट से बाहर आएगा और नेपाली राज्य और सिविल सोसायटी की इस त्रासदी पर क्या प्रतिक्रिया होगी.

लेकिन क्या यह संभव है इस त्रासदी को एक अवसर की तरह लिया जाए? इस महाविनाश के कारण राजनैतिक समायोजन का मार्ग ठीक उसी तरह से प्रशस्त हो गया है जैसे कि आचे में सुनामी के कारण शांति का माहौल बन गया था. यही सबसे ताज़ा प्रमुख उदाहरण है. नेपाल अपनी शांति प्रक्रिया के अंतिम चरण में है. एक दशक पहले ही गृह युद्ध के कारण उस समय शांति बहाल हुई थी जब लोकतांत्रिक राजनैतिक दलों और माओवादियों ने एकसाथ मिलकर राजतंत्र को उखाड़ फेंकने में कामयाबी हासिल की थी. लेकिन यह काम अभी-भी अधूरा है.

नेपाल में राजनैतिक व्यवस्था अभी-भी निष्क्रिय पड़ी है और संविधान सभा संघीय क्षेत्र के सीमांकन के प्रश्न पर गंभीर राजनैतिक ध्रुवीकरण के कारण पिछले सात साल से एक सामाजिक दस्तावेज़ तैयार करने के प्रयास में जुटी है. नेपाल आज भी मात्र एक शहर का ही देश बना हुआ है, जिसमें सारे अवसर और सुविधाएँ काठमांडु राजधानी में ही केंद्रित हैं. क्या यह भूकंप और उसके बाद के विनाशकारी झटके नेपाल को एक नया संविधान दे सकते हैं? क्या यह त्रासदी काठमांडु सरकार के लिए संघीय ढाँचे के अंतर्गत विकेंद्रीकरण का मार्ग

प्रशस्त कर सकती है ?

संविधान सभा में नेपाल के राजनैतिक दलों के अंदर देश के भावी स्वरूप को लेकर विशेष रूप से सरकार, चुनाव प्रणाली, न्यायपालिका के स्वरूप और संघीय ढाँचे के संबंध में परस्पर बुनियादी मतभेद हैं, लेकिन अब कम से कम पहले तीन मुद्दों के बारे में नेपाली कांग्रेस और नेपाल की एकीकृत मार्क्सवादी लेनिनवादी साम्यवादी पार्टी (माओवादी) जैसे शासकीय दलों और नेपाल की एकीकृत मार्क्सवादी साम्यवादी पार्टी (माओवादी) और मधेसी पार्टी के रूप में विख्यात तराई क्षेत्र की क्षेत्रीय पार्टी जैसे विरोधी दलों के बीच आम सहमति होने लगी है. भविष्य में नेपाल में संसदीय प्रणाली होगी, जिसमें एक ऐसी मिली-जुली चुनावी प्रणाली लागू होगी, जिसमें पहले 'पास्ट द पोस्ट' और आनुपातिक प्रतिनिधित्व मॉडल (यद्यपि सही अनुपात पर अभी-भी विवाद कायम है) दोनों के ही तत्व मौजूद होंगे और केंद्र और राज्यों के बीच के विवादों को सीमित अवधि में निपटाने के लिए संवैधानिक न्यायालय गठित किया जाएगा.

जिन मूलभूत मतभेदों के कारण संविधान लटका पड़ा है, वे हैं, संघीय प्रणाली और राज्यों का सीमांकन. विरोधी दल का तर्क है कि नेपाल की आबादी की विविधता को देखते हुए इसके एकीय संगठन में बदलाव लाने की आवश्यकता है; कई सामाजिक वर्ग सत्ता के अंग नहीं बन पाए हैं और सत्ता में बराबरी की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए संघीय ढाँचा आवश्यक है. यही कारण है कि सीमा निर्धारण करते समय "पहचान" की मूल संकल्पना से जुड़ी इस विचार धारा को प्राथमिकता मिलने लगी है. शासक दल संघीय ढाँचे की संकल्पना को अब तक टालता रहा है, लेकिन लोकप्रिय आंदोलनों के कारण इस विचार को अब हवा मिलने लगी है. उनका मानना है कि संघीय ढाँचा इस समय आवश्यक है और इसका आधार होना चाहिए, प्रशासनिक व्यवहार्यता. इसके कारण "राष्ट्रीय एकता" में "बाधा" उत्पन्न नहीं होनी चाहिए और यही कारण है कि वे "क्षमता " की विचारधारा को महत्व देते हैं. लेकिन असली समस्या है, दोनों पक्षों के बीच गहरा अविश्वास और उससे जुड़े षड़यंत्रों के किस्से. विरोधी दल का मानना है कि NC-UML के प्रस्ताव को मानने का अर्थ होगा, "उच्च वर्ग के प्रभुत्व" को स्वीकार करना और तब उन्हें राजनैतिक हाशिये पर धकेल दिया जाएगा, जबकि शासक दल यह समझता है कि माओवादी-मधेसी लोगों की माँगों को मानने से "जातीय संघर्ष "को बढ़ावा मिलेगा.

भले ही इस समय यह न लगता हो, लेकिन दोनों पक्षों के बीच समझौते की काफ़ी प्रबल संभावनाएँ हैं. दोनों ही पक्ष मानते हैं कि पहचान और क्षमता दोनों ही बातों को सिद्धांततः स्वीकार किया जा सकता है. NC-UML ने छह-सात प्रांतों की माँग की है, जबकि माओवादी आठ से दस प्रांतों की माँग कर रहे हैं. इसका अर्थ है कि प्रांतों की संरचना जनसांख्यिकीय आधार की जानी चाहिए. यदि सिद्धांतों पर सहमति हो जाती है तो संख्या की बात गौण हो जाएगी. प्रांतों के नाम या तो प्रांतीय विधान सभाओं पर छोड़े जा सकते हैं या फिर उन्हें सांस्कृतिक और भौगोलिक पहचान के अनुसार तय किया जा सकता है. ऐसे अनेक प्रस्ताव हैं जिनसे तराई क्षेत्र के पाँच या छह ज़िलों का भाग्य निर्धारित हो सकता है, लेकिन उनके बारे में इस बात को लेकर आम सहमति नहीं हो पाई है कि ये प्रस्ताव आयोग को सौंप दिये जाएँ और आयोग भूसांख्यिकी के आधार पर इन ज़िलों को विभाजित करने का निर्णय करे. जब भूकंप आया था तो यह बहस यहीं आकर रुकी हुई थी.

नेपाल के राजनैतिक दलों को इस बात का एहसास होना चाहिए कि 25 अप्रैल को उन तीस सैकंडों में ही

राष्ट्रीय प्राथमिकताएँ बदल गई थीं. जब अपना अस्तित्व ही दाँव पर लगा हो तो हमें दूसरों पर हावी होने का ख़्याल ही दिमाग से निकाल देना चाहिए. हो सकता है कि शासक दल यह सोचकर कि विरोधी दल इस समय पहचान के मुद्दे को लेकर कोई आंदोलन चलाने की स्थिति में नहीं है, इस मौके का लाभ उठाकर संघीय ढाँचे के बिना ही संविधान को पारित कराने पर तुल जाए. इससे समस्या कुछ समय तक टल तो जाएगी, लेकिन इससे समस्या का समाधान नहीं होगा, क्योंकि संघीय ढाँचे की माँग नेपाली राजनीति का केंद्रीय मुद्दा है. विरोधी दल भी यह सोचकर अपना आंदोलन स्थगित कर सकता है कि इससे लोगों में सरकार के प्रति मोहभंग की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी और हो सकता है कि लोगों के असंतोष के कारण उनकी सौदेबाजी की स्थिति और भी मज़बूत हो जाए. लेकिन इस असंतोष का लाभ कट्टरवादी ताकतों को भी मिल सकता है. इनमें से कोई भी रवैय्या उन ताकतों के दीर्घकालीन राजनैतिक हित में नहीं होगा जिन्होंने सामूहिक रूप से सन् 2006 में गणतंत्रीय व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए संघर्ष किया था. इसके बजाय राजनैतिक दलों को, जिनकी विश्वसनीयता पहले से ही कम हो गई है, चाहिए कि वे पहले से ही निचले स्तर पर पहुँचे हुए सामाजिक ध्रुवीकरण का इस्तेमाल करें और जटिल मामलों को निपटाने के लिए राष्ट्रीय एकता की भावना को मज़बूत करें.

सभी दलों को यह प्रलोभन भी हो सकता है कि वे अन्य तात्कालिक प्राथमिकताओं के कारण संवैधानिक प्रश्न को फिलहाल ठंडे बस्ते में डाल दें. इससे यह भी लगेगा कि पुनर्निर्माण के कार्य को टालने की कोई कोशिश नहीं हो रही है, बल्कि उसकी अनिवार्यता को प्राथमिकता दी गई है. वर्तमान अंतरिम व्यवस्था में स्थिरता की कमी है, इसलिए व्यवस्था में कुछ हद तक स्थिरता लाकर ही पुनर्निर्माण के काम पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता है. राजनीतिज्ञों को चाहिए कि वे इस वर्ष के अंत तक संविधान का काम खत्म करने और अगले वर्ष के दौरान क्रमिक रूप में राज्य स्तर के चुनाव और स्थानीय चुनाव कराने के लिए अठारह महीने का एक रोडमैप बना लें.

इस प्रक्रिया का और गहरा प्रभाव पड़ेगा. भूकंप ने नेपाल के राष्ट्रीय जीवन में कुछ औचित्य के साथ ही सही काठमांडु को केंद्र में लाकर खड़ा कर दिया है. यह एक बड़ा शहर है, जिसकी आबादी तीन मिलियन के आसपास है जबकि पूरे देश की आबादी तीस मिलियन से कुछ कम है. राजधानी में व्यापक विनाश होने के कारण शहर के अधिकांश निवासी रात को खुले आकाश में सोने के लिए बाध्य हो गए हैं.

यह समय काठमांडु बनाम उसकी परिधि का मुद्दा उठाने का नहीं है, क्योंकि राजधानी के बाहर के इलाकों में इससे कहीं अधिक विनाश हुआ है. सिंधुपालचौक, दोलखा, रसुवा के कुछ भाग और गोरखा ज़िले तो पूरी तरह ध्वस्त हो गए हैं. काठमांडु में सरकार का मुख्यालय होने के कारण पहले कुछ दिनों में तो मीडिया के लिए वहाँ के हालात और कहानियों पर पूरा ध्यान केंद्रित रखना स्वाभाविक ही था, लेकिन अब स्थिति बदल गई है और यह एहसास होने लगा है कि नेपाल के ग्रामीण और पहाड़ी इलाकों में मदद की कहीं अधिक ज़रूरत है. लेकिन अभी-भी कई गाँव ऐसे हैं जहाँ तक कोई नहीं पहुँच सका है. कितने ही लोगों के शव खंडहरों के नीचे अभी भी दबे पड़े हैं. आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई बहुत हद तक अभी-भी बहाल नहीं हो पाई है.

इन जगहों से सीधे मिलने वाली अपुष्ट रिपोर्टों से यही पता चलता है कि स्थानीय प्रशासकों ने, भले ही वे ज़िला मुख्यालयों के मुख्य ज़िला अधिकारी हों या फिर गाँव-स्तर के ग्राम विकास समिति के सचिव हों, आगे बढ़कर पार्टी के नेताओं, स्थानीय समुदाय-आधारित संगठनों के विभिन्न कार्यकर्ताओं, पुलिस और सेना की सलाह लेते हुए राहत सामग्री का वितरण किया है. उन्होंने नये-नये तरीकों से बाहर से राहत सामग्री मँगवाने में स्वयंसेवकों की मदद की है और इस सामग्री को प्रभावी तरीके से लोगों तक पहुँचाने में उन्हें आवश्यक सलाह और अपनी विशेषज्ञता प्रदान की है. स्थानीय समुदाय के लोगों ने स्वयं ही पहल की है और ये लोग अपने घरों के पुनर्निर्माण में खुद ही जुट गए हैं, लेकिन इन सभी कामों को अंजाम देने में अपेक्षाकृत निष्क्रिय पड़े केंद्रों के कारण और दूर-दराज़ इलाकों में होने के कारण काफ़ी दिक्कतों और बाधाओं का सामना करना पड़ा है और भोजन, तम्बू, तिरपाल और जस्ते की चादरों जैसी आवश्यक वस्तुओं को मँगवाकर उन्हें सप्लाई करने में कामयाबी नहीं मिल पा रही है. जल्दी ही बारिश का मौसम आने के कारण और अस्थायी आवास बनाने के लिए इनकी तत्काल आवश्यकता है. केंद्र सरकार ने ज़िलों में वरिष्ठ अधिकारियों को तैनात तो कर दिया है, लेकिन स्थानीय परिस्थितियों की जानकारी के अभाव में वे भी निष्प्रभावी सिद्ध हो रहे हैं.

बात तो सीधी-सी है और स्पष्ट भी है, लेकिन काठमांडु की सरकार ने कई दशकों में भी कोई पाठ नहीं सीखा है. प्रभावित ज़िले राजधानी से बहुत दूर नहीं हैं, फिर भी हमें लगता है कि अगर कोई व्यवस्था सबसे अधिक कारगर होती भी है तो वह स्थानीय व्यवस्था ही होती है. इसका मुख्य कारण यही है कि वे लोग अपने क्षेत्र को बेहतर जानते हैं. वे अधिक जवाबदेह होते हैं और प्रभावित लोगों से सीधे संवाद भी कर लेते हैं.

कितना अच्छा होता अगर मज़बूत उप-राष्ट्रीय / प्रांतीय इकाइयाँ होतीं और उनके नीचे गाँवों में स्थानीय सरकारें होतीं, जिनके अपने संसाधन होते और केंद्र की काठमांडु सरकार के साथ वे मिलकर काम करते. कितना अच्छा होता अगर छह या आठ राज्यों की राजधानियाँ होतीं जो अपने सीमित बुनियादी ढाँचे के साथ काठमांडु के साथ मिलकर प्रभावित क्षेत्रों में काम करतीं. ऐसी स्थिति में कार्रवाई अधिक त्वरित होती और जवाबदेही भी होती. इसका यह आशय नहीं है कि केंद्र की कोई भूमिका ही नहीं होती. भारतीय अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि राहत और बचाव कार्यों में केंद्र सरकार की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है, लेकिन जैसा कि लेखक सी.के. लाल लिखते हैं, " सेवाओं की रूटीन डिलीवरी के लिए स्थानीय सरकारें अधिक बेहतर ढंग से काम कर सकती हैं. प्राकृतिक, मानवीय या दुर्घटनाओं के कारण होने वाली विनाश लीला से निपटने के लिए जिस ढंग से स्थानीय डिलीवरी और अंतर्राष्ट्रीय समन्वय की आवश्यकता होती है, उसमें केंद्र सरकार की पहल बेहद ज़रूरी होती है, परंतु दोनों की अपने-अपने स्तर पर निश्चित भूमिका होती है. उप-राष्ट्रीय सरकार उन कामों को अक्सर बेहतर ढंग से कर सकती है जो स्थानीय इकाइयों की क्षमता से बाहर के होते हैं, लेकिन स्थानीय स्तर के कामों को सँभालना केंद्रीय स्तर के अधिकारियों के लिए संभव नहीं होता."

भूकंप ने नेपाल को एक ऐसा अवसर प्रदान किया है जिसके कारण वह गहरी राजनैतिक खाई को पाटकर संविधान में आने वाली अड़चनों को दूर कर सकता है. इसने देश को यह अवसर भी दिया है कि वह संघीय ढाँचे के अंतर्गत विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाये और काठमांडु से बाहर निकलकर नये शहरी इलाकों का निर्माण करे. अगर देश का उच्च राजनैतिक वर्ग इस अवसर का लाभ उठाने में सफल हो जाता है तो यही इस भयानक त्रासदी के अंदर छिपी हुई आशा की उज्ज्वल किरण होगी.

प्रशांत झा हिंदुस्तान टाइम्स के सह संपादक हैं और Battles of the New Republic – A Contemporary History of Nepal के लेखक भी हैं. वे "कैसी" में स्प्रिंग (वसंत) 2015 के विज़िटिंग फ़ैलो हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@gmail.com> / मोबाइल : 91+9910029919